ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-10* November- 2020
Innovation The Research Concept

आचार्य यास्क की पर्यावरणीय दृष्टि

Acharya Yask's Environmental Vision

Paper Submission: 15/11/2020, Date of Acceptance: 26/11/2020, Date of Publication: 27/11/2020

तोषी
सहायक प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
राम जयपाल महाविद्यालय ,
छपरा, बिहार भारत

सारांश

हम सभी पृथ्वी की संतान हैं और इस पृथ्वी की भी अपनी सीमाएँ है। आज के वैश्विक युग के प्रदूषण के विभिन्न स्रोतों से पृथ्वी और इसके पर्यावरण पर बहुत ही नकारात्मक प्रभाव पडा है। इस प्रकृति के असंतुलन से कहीं सूखा, कहीं बाढ, कहीं अत्यधिक ठण्डी तो कहीं अत्यधिक गर्मी पड रही है साथ ही विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं से हमें समय–समय पर जूझना पड रहा है। महानगर तो महानगर छोटे छोटे नगरों में भी शुद्ध हवा की जगह जहरीली हवाओं ने ले रखी है। मनुष्यों का जीवन तो इससे प्रभावित हो रहा है ही साथ ही सबसे ज्यादा गर्भस्थ शिशु इसका दंश झेल रहे हैं जिससे भविष्य प्रभावित हो रहा है। ऐसी विषम परिस्थितीयों में निरुक्तकार यास्क की पर्यावरणीय दृष्टि के विषय में अवलोकन करते हुए लधु शोध–पत्र प्रस्तुत करना प्रासंगिक प्रतीत हो रहा है कि सभी प्राणी इस महत्ता को आत्मीयता के साथ स्वीकार करें तथा साथ ही जन जन के मानस में पर्यावरण के प्रति अगाध प्रेम भर सके ताकि वर्तमान परिपेक्ष्य के इस संकट से हम उबरने के लिए निरन्तर प्रेरित हो सके।

We are all children of the earth and this earth also has its limits. Various sources of pollution of today's global era have had a very negative impact on the Earth and its environment. Due to the imbalance of this nature, there is a drought, some floods, some cold and some extreme heat and at the same time we have to cope with various natural disasters from time to time. The metropolis has replaced the pure air even in the small cities of the metropolis by poisonous winds. The life of humans is being affected by this, as well as the most pregnant babies are facing its sting, which is affecting the future. In such odd circumstances, it seems to be relevant to submit a lax research paper while observing about the environmental vision of the deposed Yaska, that all animals should accept this importance with affinity and also with a deep love for the environment in the mind of the people. So that we can be constantly motivated to overcome this crisis in the present context.

मुख्य शब्द : प्रकृति, आचार्य यास्क, पर्यावरणीय दृष्टि, निरुक्त, दैवतकाण्ड, सूर्य, नदी, जल, वायु, मेघ, पृथ्वी, औषधियॉ, वेद, ब्राह्मण आदि। Prakriti, Acharya Yask, Environmental Vision, Nirukta, Devatakanda, Sun, River, Water, Air, Cloud, Earth, Medicines, Vedas, Brahmins etc.

प्रस्तावना

पर्यावरण शब्द 'परि' और 'आङ्.' उपसर्गपूर्वक वरणार्थक 'वृञ्' धातु से ल्युट् प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है चारों ओर से आच्छादन करना अर्थात् पर्यावरण वह परिवृत्ति है जो मनुष्य के चारों ओर से घेरे हुए है तथा उसके जीवन और क्रियाओं पर प्रभाव डालती है। इसमें मनुष्य के बाहर के समस्त घटक, वस्तुएँ, स्थितियाँ तथा दशाएँ सम्मिलित है, जो मानव के जीवन को प्रभावित करती है।

पारिभाषिक रूप में पर्यावरण शब्द जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग है। दूसरे शब्दों में इसे हम जीवमण्डल भी कह सकते हैं, जो कि जलमण्डल, स्थलमण्डल तथा वायुमण्डल के जीवनयुक्त भागों का योग होता है।

विश्वकोष के अनुसार– पर्यावरण के अन्तर्गत उन सभी दशाओं, संगठन और प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है जो किसी जीव अथवा प्रजाति के उदभव विकास एवं मृत्यु को प्रभावित करती है।[1]

इन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार, ''पर्यावरण उन सभी बाह्य प्रभावों का समूह है, जो जीवों को प्राकृतिक, भौतिक एवं जैविक शक्ति से प्रभावित करते रहते है तथा प्रत्येक जीव को आवृत्त किए रहते है''[2]

वेद और पर्यावरण

वेदों में साक्षात् पर्यावरण शब्द से तो यही नहीं अपितु पर्यावरण से संबंधित सभी अवयवों के विषय में वैदिक ऋषियों ने अत्यधिक चिन्तन किया है। इस विषय में अथर्ववेद में वर्णन मिलता है, जिसके मंत्र में आए 'परिधि' शब्द पर्यावरण के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा इस परिधि जिसमें हम चारों तरफ से आवृत्त हैं, उसकी शुद्धता के लिए 'ब्रह्म' का प्रयोग दिखाई देता है। इस मंत्र भावार्थ के अनुसार जहाँ पर्यावरण शुद्ध रहता है वहाँ निवास करने वाले मनुष्य, पशु–पक्षी आदि सभी सुखपूर्वक जीवित रहते हैं।3 पर्यावरण के तीन प्रमुख संघटक तत्व माने जाते हैं, जिनके अन्तर्गत जल, वायु और औषधियाँ सम्मिलित हैं। यह सम्पूर्ण पृथिवी को आवृत्त किए हुए मनुष्यों को प्रसन्नता प्रदान करते हैं।[4]

ऋग्वेद के अनुसार जो अग्नि, जल, वायु और आकाश से आच्छादित है तथा जो औषधियाँ एवं वनस्पतियों में विद्यमान है, उस देवता को हम नमस्कार कहते हैं।[5]

पर्यावरण के संबंध में यजुर्वेद में कहा गया है कि हे पृथ्वी माता ! तुम हमारा पालन–पोषण उत्तम रीति से करती हो, हम कभी भी तुम्हारा दुरूपयोग न करें। रासायनिक एवं कीटनाशकों के अति प्रयोग से तुम्हारा कुपोषण नहीं करें, अपितु फसल चक्र में परिवर्तन करके प्राकृतिक खाद एवं जल से तुम्हें पोषित करें।[6]

इस तरह वनस्पतियों की महत्ता के संबंध में हमें शुक्लयजुर्वेद बतलाता है कि हे औषधियाँ, तुम में एक औषधि दूसरी औषधि के प्रभाव को सुरक्षित बनाये रखे। ये ऐसी औषधियाँ है जो परस्पर एक–दूसरे को निरोग बनाती है। इन वनस्पतियों में अनेकानेक गुण हैं जो सबको सुरक्षित रखने में समर्थ होते हैं।[7] इन वनस्पतियों के लिए कहा गया है कि वृक्ष रूप परमेश्वर को नमस्कार हो, अर्थात् वृक्ष को परमेश्वर माना जाता है।

पर्यावरण के इसी परिप्रेक्ष्य में वेदांग जो वेद के छः अंग है जिसमें चतुर्थ स्थान प्राप्त निरुक्त को वेद रूपी पुरुष का स्रोत्र बताया गया है – ''निरुक्तं स्रोत्रमुच्यते।'' निरुक्तकार यास्क ने अपने निरुक्त में नैघण्टुककाण्ड, नैगमकाण्ड तथा दैवतकाण्ड में विविध निर्वचन किये है, जिसके अन्तर्गत दैवतकाण्ड जो कि निघण्टु का पंचम अध्याय है। निरुक्तकार यास्क के दैवतकाण्ड में उदाहृत मन्त्रों के माध्यम से तथा तत्सम्बन्धी निरुक्ति से आचार्य यास्क की पर्यावरणीय दृष्टि अवलोकित होती है। इसी सन्दर्भ में आचार्य यास्क ने दैवतकाण्ड के आठवें अध्याय में पर्यावरण के मुख्य तत्व अग्निदेवता को माना है, जो वर्षा होने की प्रक्रिया के चक्र में मुख्य भूमिका निभाते हैं। यह अग्नि अपनी ज्वालाओं से हव्य पदार्थों को सूक्ष्म करके अर्थात् धूम रूप से सर्वत्र पहुँचाते हैं।[8] ये घनीभूत होकर बादल बनते हैं तथा वर्षा करते हैं। अग्नि को वनों तथा जलों के रक्षक होने के कारण वनस्पति भी कहा गया हैं।[9] आचार्य मनु के अनुसार अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य की ओर जाती है, फिर बादल बनकर वृष्टि होती है; वृष्टि से अन्न एवं औषधियाँ उत्पन्न होती हैं।[10]

निरुक्तकार यास्क ने दैवतकाण्ड के उदाहृत मन्त्रों के अथवा निर्वचनों के माध्यम से पर्यावरण विज्ञान के संबंध में महत्वपूर्ण सूक्ष्म वैज्ञानिक तथ्यों को उपस्थापित किया है जो सर्वथा अपरिहार्य है। इसी क्रम में वेदों में जल की उपयोगिता और महत्ता को बतलाया गया है। ऋग्वेद में इसे जीवन, अमृत, भेषज तथा रोगनाशक तथा आयुवर्द्धक माना गया है।[11] इसके अतिरिक्त जल को दूषित करना पाप है तथा जल देवता से यह प्रार्थना की जाती है कि यह में सुख देने वाले हैं तथा पृथिवी को अन्न के उत्पादन के लिए योग्य बनाएँ।[12] इस संबंध में वरुण देवता[13] के निर्वचन के अन्तर्गत जिस ऋग्वैदिक मन्त्र को उदाहृत किया है, जिसके अनुसार जिस प्रकार कृषक जल–सिंचन से यवादि धान्यों को आर्द्र कर देता है, इसी तरह इस वरूण देवता की प्रेरणा से वर्षा का जल भूमि को आर्द्र कर देता है।[14] इस प्रकार से जल की महत्ता को समझते हुए इसके संरक्षण पर आधुनिक काल में भी बहुत ध्यान दिया गया है। वैदिक युग में भी भारतीय मनीषियों ने प्रदूषण की समस्या पर ध्यान था। पद्मपुराण[15] में तीर्थयात्रा से संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण नियम दिए गए हैं। उसके अनुसार गंगा के जल में थूकना, मूत्र करना, कूड़ा–करकट डालना, गंदा जल डालना तथा गंगा के किनारे शौच आदि करना महापाप है। ऐसा करने वाला नरक में जाता है और उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है। वैदिक साहित्य में 'औषधि'शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है। इसमें सभी प्रकार के वृक्ष–वनस्पति आते हैं। औषधि शब्द की कई प्रकार से व्याख्या की गई है। सायण ने व्युत्पत्ति दी है ओषः पाकः फलपाकः यासु धीयते इति ओषधयः।'' अर्थात् जिनके फल पकते हैं; उन्हें औषधि कहते हैं। आचार्य यास्क ने इसकी निरुक्ति दी है, जो शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करके उसे धारण करती है या जो दोष, प्रदूषण आदि को दूर करती है।[16]

यह औषधि शरीर में रोग की जलन को पी जाती है, नष्ट कर देती है। इस संबंध में आचार्य यास्क ने निरुक्त के दैवतकाण्ड में ऋग्वैदिक ऋचा को उदाहृत किया, जिसका आशय है कि औषधियों की उत्पत्ति देवताओं से भी पूर्व हुई है। यह औषधि परिपक्व होकर पीले रंग वाली, सभी प्राणियों के रोग का हरण करने वाली तथा भरण–पोषण करने वाली है।[17] महाभारत के शान्तिपर्व में भी यह उल्लेख प्राप्त होता है कि औषधियाँ देवों से पहले उत्पन्न हुई हैं।[18] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार भी इन औषधियों को दोषनाशक कहा गया है। औषधियाँ शरीर में वात–पित–कफ रूपी त्रिदोष को नष्ट करती है।[19] अथर्ववेद के अनुसार जल वनस्पति और औषधियों में जीवन रक्षक की शक्ति है।[20]

दैवतकाण्ड मंत्रों में पर्यावरण स्वरूप एवं विकृति

पर्यावरण के इसी स्वरूप के अनुशीलन में निरुक्त में उदाहृत मन्त्रों एवं वैदिक शब्दों के निवर्चन के माध्यम से पर्यावरण के स्वरूप पर सांकेतिक रूप से आचार्य यास्क ने प्रकाश डाला है, जिसका विवरण इस प्रकार है – निरुक्तकार यास्क ने अपने निरुक्त के दैवतकाण्ड में जैविक पर्यावरण, जिसमें समस्त जीव–जगत्

और सभी प्रकार के पौधे सम्मिलित हैं, एवं भौतिक पर्यावरण जिनमें नदियाँ, मेघ, जल, वायु, पृथिवी इत्यादि सभी आते हैं तथा जिनका सम्यक् रूप से चिन्तन किया गया है।

सर्वप्रथम हम पर्यावरण के मुख्य तत्व सूर्य को लें तो इस संबंध में आचार्य यास्क ने निरुक्त के दैवतकाण्ड के सातवें अध्याय में सूर्य के कार्य के स्वरूप का चित्रण किया गया है। जिसके अनुसार सूर्य की रश्मियाँ रस को धारण करके औषधि वनस्पतियों की वृद्धि करती हैं, तथा इन्हें पुष्टि प्रदान करती है।21 यहाँ सूर्य रश्मियों के द्वारा रस को (पृथिवीस्थानीय सम्पूर्ण प्राणी जगत्) आधरण करके अर्थात् सब ओर से धारण करते हुए वेग से गतिशील होते हुए द्युलोक में स्थित है। यही सूर्य देवता का सूर्यत्व कहलाता है। विष्णु पुराण22 में यह वर्णन मिलता है कि सूर्य आठ मास तक अपनी किरणों से रसस्वरूप जल को ग्रहण करता है तदुपरान्त उसे चार महीनों में बरसा देता है। अर्थात् वर्षा ऋतु में जल बरसाता है। उस जल से अन्न की उत्पत्ति होती है तथा अन्न से ही सम्पूर्ण जगत् पोषित होता है।

इसी के साथ ही विभिन्न नदियों के उसके भौगोलिक स्वभाव के अनुरूप वर्णन निरुक्त में मिलता है, जिसे आचार्य यास्क ने दैवतकाण्ड के नवें अध्याय में उन नदियों के स्वरूप को अपनी निरुक्ति तथा ऋग्वेद के दसवें मण्डल के नदी सूचक के मंत्र द्वारा स्पष्ट किया है।[23] इस मंत्र में उदृत प्रत्येक नदी के उसके नाम के अनुसार ही यास्क ने निर्वचन किया है, जिससे इन नदियों के स्वरूप की जानकारी मिलती है। यथा– गंगा सदा अनवरत गति से चलती रहती है। अथवा यह उत्तम स्थान पर पहुँचा देती है। अतः गंगा कही जाती है। यमुना अपने जल को अन्य नदियों के साथ मिलाती हुयी बहती रहती है, अतः यमुना कहलाती हैं। तीव्रगति से जल बहाने वाली नदी शुतुद्री कहलाती है तथा नदी जल से युक्त होने से सरस्वती कही गयी।[24]

जो नदी पर्व वाली होती है, कुटिलगामिनी तथा टेढ़ा चलने वाली होती है, वह पुरूषणी है। इसी प्रकार चूँकि सिन्धु नदी पर्वतों से स्यन्दित हुईं है, अतः सिन्धु कही जाती है।[25] नदियों के स्वरूप का निर्वचन के द्वारा ऐसा वर्णन अन्यत्र अप्राप्त सा लगता है। इससे वेद–वेदांग की वैज्ञानिक सूक्ष्म दृष्टि परिलक्षित होती है।

नदियों के स्वरूप जानने के बाद निरुक्त के दैवतकाण्ड के दसवें अध्याय में वायु के स्वरूप का उल्लेख आचार्य यास्क ने वैदिक मन्त्र के माध्यम से किया है।[26] जिसका अभिप्राय है वायु मेघों की रक्षा करता है तथा जल को धारण करने वाले मेघ को वायु अपने सामर्थ्य से बरसाती है। इसी जल को सूर्य की किरणें पास करती हैं, अर्थात् अवशोषित करती है। फिर वे मेघ द्वारा उसमें वृद्धि कर जल बरसाती हैं। इस तरह इस पर्यावरण मेघजल का रक्षक वायु है, जो वर्षा करके अन्न का पालन–पोषण करता है।[27] इस मेघजल के विषय में, आचार्य यास्क ने इसी अध्याय में ऋग्वैदिक मन्त्र के उदाहरण द्वारा पर्यावरण संबंधी महत्त्वपूर्ण तथ्य को कहा है, जिसके अनुसार मेघ बरस करके पापों को दूर करता है, क्योंकि अकाल पड़ने पर मनुष्य अनेक पापों को करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। यह मेघ की अनावृष्टि अर्थात् जल के अभाव का निवारण करके पापों को नष्ट करती है।28 कभी–कभी बादल की जोर की गर्जना से जिस मनुष्य के कान बन्द हैं, उसका मेघ गर्जन से 'बधिर' दोष का भी निवारण हो जाता है29, ऐसा ऋग्वेद के चौथे मण्डल के 23वें सूक्त में कहा गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मेघ गर्जना के अतिरिक्त अन्य कर्कश आवाज इत्यादि कर्ण को बधिर करते है। यही ध्वनि प्रदूषण है। इस ध्वनि प्रदूषण से व्यक्ति को बचाने के लिए भी पञ्चभूतों एवं विशेषकर मेघ की गर्जना अच्छी मानी गयी है। इसी में पर्जन्य देवता का देवत्व भी है।

इसी प्रकार अन्तरिक्ष के पर्यायवाची बुध्न पर विचार करते हुए आचार्य यास्क ने दैवतकाण्ड के दसवें अध्याय में 'बुध्न'30 के निर्वचन पर विचार करते हुए तर्क देते हैं कि बुध्न को बुध्न इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें जल बंधे होते हैं। इस कारण ही इन्होंने 'बुध्न' को अन्तरिक्षस्थानीय माना है और जल के बंधे होने से 'मेघ' ही 'बुध्न' है, यह स्पष्ट हो जाता है। इस संबंध में यास्क द्वारा उदाहृत ऋग्वेद के मन्त्र के अनुसार जल के चक्र का वर्णन भी प्राप्त होता है। यह जल सूर्य की किरणरूपी अग्नि से ऊपर जाता है और अन्तरिक्ष को शक्ति एवं पोषण प्रदान करता है। यही मेघरूप में स्थित होकर वृष्टि के द्वारा पृथिवी को शक्ति देता है।[31]

तैत्तिरीय संहिता[32] में भी जलीय चक्र का उल्लेख प्राप्त होता है कि नदियों तथा समुद्र का जल वाष्प रूप में परिवर्तित होकर मेघ का गर्भाधान होता है। मेघरूपी गर्भ को परिपक्व होने में लगभग साढ़े छह मास या एक सौ पचासी दिन लगते हैं, फिर यह परिपक्व होकर मेघ एक सौ पिचयानवे दिन बाद वर्षा के रूप में पृथिवी पर बरसता है।

विकृति

पर्यावरण के स्वरूप के विषय में जानने के पश्चात् यह स्वयंमेव स्पष्ट हो जाता है कि स्वच्छ पर्यावरण ही हमें इस धरा पर सुख एवं शान्ति प्रदान करता है। यदि कभी इस प्रकृति या पर्यावरण में विकृति उत्पन्न हो जाती है–जैसे :– ओलावृष्टि, जलप्लावन इत्यादि, तब ऐसी परिस्थिति में पर्यावरण के स्वरूप में विकृति तो आती ही है, साथ ही हमारा जीवन असुरक्षित हो जाता है।

इसी तथ्य के संबंध में आचार्य यास्क के दैवतकाण्ड में वैदिक मन्त्रों की यास्कीय व्याख्या तथा उनके द्वारा किए गए निर्वचनों के द्वारा संकेत मिलता है। दैवतकाण्ड के दसवें अध्याय में पर्जन्य देवता[33] की निरुक्ति के अनुसार मध्यमस्थानीय अर्थात् अन्तरिक्षस्थानीय पर्जन्य देवता सम्पूर्ण जनपदों को तृप्त कर देने वाला है। परन्तु इसके साथ पर्जन्य देवता वृक्षों पर बिजली गिरा कर इसे नष्ट कर डालता है। सम्पूर्ण जगत् पर्जन्य की इस महामारक शक्ति से भयभीत रहता है।[34] इसी सन्दर्भ में निरुक्त के टीकाकार पं0 भगवद्दत्त के अनुसार यह पर्जन्य देवता अतिवृष्टि से पार्थिव पौधों, वृक्षों को नष्ट कर डालते हैं तथा यह जलप्लावन भी उत्पन्न कर देते हैं।[35]

यास्कीय निरुक्त में आए वैदिक मन्त्रों के अनुशीलन के प्रसंग में हमें यह पता हैं कि जहाँ एक ओर

वेदों में सभी देवता पर्यावरण का संरक्षण करते हैं, वहीं दूसरी ओर वैदिक ऋषियों द्वारा दर्शाए पर्यावरण के विभिन्न तत्व हमें शान्त एवं सुखी–सम्पन्न बनाने की चेष्टा करते है। इसलिए इनकी वेदों मे प्रार्थना की गयी है।[36]

दैवतकाण्ड में यास्क द्वारा पर्जन्य देवता के उल्लेख से यह पता लगता है कि जो जनों का हित करने वाला है, वही अतिवृष्टि कर वृक्षों को नष्ट करने तथा जलप्लावन जैसी स्थिति उत्पन्न करने में सक्षम है अर्थात् पर्यावरण में विकृति उत्पन्न करके उसके सन्तुलन को बिगाड़ने का सामर्थ्य रखते हैं। इस तरह हमें चाहिए कि हम अत्यधिक वृक्षारोपण करें, ताकि पर्यावरण में विकार उत्पन्न न हो। वृक्षारोपण के महत्त्व के विषय यजुर्वेद के पाँचवें अध्याय के 43वें मन्त्र में कहा गया है कि ''एक वृक्ष दस पुत्रों के समान होता है।''[37]

अध्ययन का उद्धेश्य

कोरोना रूपी वैश्विक महामारी के इस दौर में पर्यावरण की प्रासंगिकता और महत्ता सर्वविदित है। प्रस्तुत शोध.पत्र द्वारा पर्यावरण की महत्ता को पुनः प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में आचार्य यास्क के निरुक्त के अन्तर्गत जो पर्यावरण के मुख्य तत्वों की वैज्ञानिकता स्पष्ट है। जो आज भी प्रासंगिक है इन्हीं तथ्यों को उजागर करना ही मेरा मुख्य उद्धेश्य रहा है।

उपसंहार

इस तरह आचार्य यास्क ने उक्त निर्वचन तथा मन्त्र के माध्यम से पर्यावरण के प्रमुख घटक जलीय चक्रों का वर्णन किया है। वेद एवं वैदिक साहित्यों में ऋषि–मनीषियों की दृष्टि में पर्यावरण एवं मनुष्य में अन्योन्याश्रय संबंध रहा है। वैदिक काल से ही वृक्षों, नदियों तथा अन्य प्राकृतिक पदार्थो को ही पूजा करने की परम्परा सम्भवतः इसलिए रही है कि इसके बिना मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। श्री मद्भवगतगीता में ब्रह्मरूपी इस प्रकृति को महान् गर्भ कहा गया है, जो कि सभी जीवों का मूल कारण है। यह प्रवृति ही इन सब जीवों के हित के लिए पर्यावरण प्रदान करती है।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भ दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।

पर्यावरण के प्रति ऋषि–मुनियों की दृष्टि सूक्ष्म और वैज्ञानिक रही है, जो अद्यतन प्रासंगिक है अतः हमारा मानवीय कर्त्तव्य बनता है कि हमें पर्यावरण के साथ आत्मीयता की अनुभूति शाश्वत रखनी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *विश्वकोष के अनुसार*
2. *इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार*
3. *सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषम पशुः।*
   यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधि र्जीवनायकम्।।
   – अथर्व – 8.2.25
4. *त्रीणि छन्दांसि कवयो वियेतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।*
   आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन् अर्पितानि।।
   – अथर्व – 18.1.17
5. *ऋग्वेद यो देवोऽगो यो ऽप्सु विश्वं भूवनामाविवेश यो औषधिषु योवनस्यातिषु तस्मै देवाय नमो नमः।*
6. *पृथिवी मातर्मा या हिंसीर्मोअहंत्याम्।*
7. *– यजुर्वेद – 10.23*
8. *अन्या वो अन्यामवत्यन्यान्यस्याम् उपावत।*
   ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः।।
   – यजुर्वेद – 12.88
9. *मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽण्यिन् वीलयस्वा वनस्पते।*
   आयूयां धृष्णो अभिगूर्या तवं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः।।
   – ऋ – 2.37.3
   वनस्पत इत्येनमाहैष हि वनानां पाता वा पालयिता वा।
   वनं वनोतेः। पिबर्तुभिः कालैः।
   – निरुक्त – 8.3
10. *प्राणौ वै वनस्पतिः।*
    – ऐतरेय ब्राह्मण – 2.4
11. *अग्नौ प्रस्तादुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।*
    आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेस्त्र ततः प्रजाः।।
    – मनुस्मृति – 3.76
12. *अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।*
    अग्निं च विष्वषं भुवमापश्च विष्वभेषजीः।।
    – ऋग्वेद – 1.23.20
13. *अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजं यपामुत प्रषस्तयो देवा भत वाजिनः।*
    – ऋग्वेद – 1.23.19
14. *वरुणो वृणोतीति सतः।*
    – निरुक्त – 10.2
15. *नीचीनबारं वरुणः कबन्धा प्रसर्जरोदसी अन्तरिक्षम्।*
    तेन विष्वास्य भुवनस्थ राजा यवं न वृष्टियुंनति भूम।।
    – ऋग्वेद – 5.85.3
16. *मूत्रं वाऽथ पुरीषं वागंगातीरे करोति यः।*
    न दृष्टा निस्कृतिस्तस्य कल्पकोटिकैषतैरपि।।
    श्लेष्माणं वापिनिष्ठीवं दूषितांब्वश्रुत वामलम्।
    उच्छिश्टं कफकं चैव गंगागर्भे च यस्त्यजेत्।
    स याति नरकं घोरं ब्रह्महत्यां च विदन्ति।।
    –पद्मपुराण क्रिया योग 8.8 से 10 तक
17. *ओषधयः ओषद् धयन्तीति वा।*
    ओषत्येनाधन्तीति वा दोषं धयन्तीति वा।
    – निरुक्त – 9.27
18. *या ओषधीः पूर्वाजातादेवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।*
    मनै नुबभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च।।
    – ऋग्वेद – 10.97.1
19. *सृजत्योषधिमेवाग्रे जीवनं सर्वदेहिनाम्।*
    ततो ब्रह्मणमसृजद्हैरण्याण्डसमुद्भवाम्।।
    – महाभारत, पर्व अ. 316
20. *ओषंधयेति तत ओषधयः समभवम्।*
    – शतपथ ब्राह्मण– 2.2.4.5
21. *यद्यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीश पुरुदं ससाकृतम्।*
22. *– अथर्ववेद – 20.139.5*
23. *अथास्य कर्म रसादानम् रश्मिभिश्च रसाधारणम्*
    यच्च किंचित्प्रवल्हितम्आदित्यकर्मेव तत्।
    – निरुक्त – 7.11
24. *विवस्वानष्टाभर्मा सैरादायाणां रसात्मिका वर्षत्युम्बु*

ततश्चान्नमन्नाट्प्र्याखिल जगत्।
– विष्णु पुराण – 9.8
25. इमं में गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्ण्या। आसिकन्या मरुदुधे वितस्तयाजीक्रीये श्रृणुह्या सुषोमया।
– ऋग्वेद – 10.75.5
26. अथैकपद निरुक्तं– गंगा यमुना प्रयुवती गच्छतीति वा प्रवियुतं
गच्छतीति वा। सरस्वती सर इन्युदकनाम सर्त्रेस्तद्वती। शुतुद्री शुद्रविणी क्षिप्रदाविण्यायु तुन्नेव द्रवतीवि वा।
27. इरावती परुष्णीप्याहुः पर्ववती भास्वती कुटिलगामिनी, सुषोमा सिन्धुर्यदेनामभिप्रसवन्ति नद्यः। सिन्धु : स्यन्दनात्।
– निरुक्त– 9.20
28. अश्नापिद्व मधु पर्यपश्चन्मत्स्थं न दीन उदनि क्षियन्तम्।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पति विरवेणा विकृत्या ।।
ऋग्वेद– 10.68.8
29. अशनवता मेघेनापिनद्धं मधु पर्यपश्चन्मत्स्यमिव दीन उदके निवसन्तं निर्जहार तच्चमसमिव वृक्षप्त्।
निरुक्त– 10.6
30. ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि ह्यन्ति
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः।।
ऋग्वेद– 4.23.8
31. बधिरो बद्धश्रोत्रः । कर्णौ बोधायन्
दीप्यमानश्चायोस्यनस्य मनुष्यस्य ज्योतिषो वौदकस्य वा ।
ऋग्वेद– 4.23.8
32. बुध्नमन्तरिक्षम्, बद्धाअस्मिन् धृता आप इति वा । इदमपीतरद् बुध्नमेतस्मादेवा बद्धाअस्मिन् धृताः प्राणा इति।
निरुक्त– 10.26
33. समानमेतदुदकम् उच्चैत्यव चाहमिः।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ।।
ऋग्वेद– 1.164.51
34. ज्योतष्मतीष्मतीस्मतस्वरीरुन्दतीः सुफेनाः। ....
एवास्मै लोकाः प्रीता अभीष्टा भवन्ति। तैत्तिरीय संहिता– 2.4.7 से 10
35. पर्जन्यस्तृपेराद्यन्त विपरीतस्य तर्पयिता जन्यः।
निरुक्त– 10.5
36. विवृक्षान् हत्युत हन्ति रक्षसो विष्वं विभाय भुवनं महावधात्। उतानागाईषते वृष्णयावतो यत् स्तनयत् हन्ति दुष्कृतः ।।
ऋग्वेद– 5.85.2
37. निरुक्तम्– पं. भगवद्दत्त भाष्य
पृ0 सं. 524
38. द्यौः शान्ति, ओषधयः शान्ति, वनस्पतयः शान्ति, विष्वेदेवाः शान्ति। तैत्तिरीयोपनिषद्
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्षो वि रोह सहसवल्षा वि वयं रुहेम।
यजुर्वेद– 5.43